IMPACT FACTOR 7.50 (SJIAI)

बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM

Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 4, Issue 4 October-December, 2026
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
doi.org/10.5281/zenodo.23636767

ISSN : 3048-6971

संस्कृत साहित्य में महिलाओं की सामाजिक स्थिति: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ धनंजय शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर (समाजशास्त्र)
राजकीय महाविद्यालय, नैनबाग, टिहरी गढ़वाल, उत्तराखंड
पिन कोड़ -249186
dsbhu2008@gmail.com

शोध सार

भारतीय संस्कृति, परंपरा और सामाजिक संरचना का संस्कृत साहित्य एक महत्वपूर्ण दर्पण है, जिसमें विभिन्न कालखंडों में महिलाओं की स्थिति का व्यापक चित्रण मिलता है। इस अध्ययन का उद्देश्य संस्कृत साहित्य के माध्यम से महिलाओं की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करना है। वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा, धर्म और सामाजिक जीवन में पर्याप्त स्वतंत्रता एवं सम्मान प्राप्त था। वे वेदाध्ययन, यज्ञों में सहभागिता तथा दार्शनिक विमर्शों में सक्रिय रूप से भाग लेती थीं। उत्तरवैदिक काल में धीरे–धीरे उनकी स्थिति में परिवर्तन आने लगा और पितृसत्तात्मक व्यवस्था मजबूत होती गई। महाकाव्यों में महिलाओं की स्थिति मिश्रित रूप में दिखाई देती है, जहाँ एक ओर उन्हें आदर्श और शक्तिशाली रूप में प्रस्तुत किया गया है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक सीमाओं और बंधनों का भी चित्रण मिलता है। धर्मशास्त्रों, विशेषकर मनुस्मृति, में महिलाओं की स्वतंत्रता पर नियंत्रण और पुरुष–प्रधान व्यवस्था को सुदृढ़ करने वाले नियमों का उल्लेख मिलता है। मध्यकालीन संस्कृत साहित्य में महिलाओं की स्थिति और अधिक सीमित हो जाती है तथा उन्हें मुख्यतः पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित कर दिया जाता है। प्रस्तुत शोध–पत्र के अध्ययन में वैदिक काल, उत्तरवैदिक काल, महाकाव्य काल, धर्मशास्त्र काल तथा मध्यकालीन संस्कृत साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द– संस्कृत साहित्य, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, ऋग्वेद, वैदिक काल, उत्तरवैदिक काल, वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, स्मृतिया, मनुस्मृति, नाट्यशास्त्र।

प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य भारतीय सभ्यता, संस्कृति और सामाजिक संरचना का प्राचीनतम एवं प्रामाणिक स्रोत है। यह न केवल धार्मिक और दार्शनिक विचारों का संकलन है, बल्कि उस समय के समाज के विभिन्न आयामों–जैसे सामाजिक व्यवस्था, नैतिक मूल्यों, परंपराओं और मानव संबंधों–का भी सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है। इस साहित्य में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन विशेष महत्व रखता है, क्योंकि किसी भी समाज की प्रगति और सभ्यता का स्तर उसकी महिलाओं की स्थिति से ही आँका जाता है।

भारतीय संस्कृति में स्त्रियों के नाम के साथ **'देवी'** लिखने और सम्बोधित करने की परम्परा आदि काल से चली आ रही है। यह इस बात का प्रतीक है कि हिन्दू विचारधारा में नारी को देव श्रेणी की सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। क्षीर स्वामी ने कहा है कि नारी को **'स्त्री'** इसलिए कहा जात है, क्योंकि गर्भ की स्थिति उसके भीतर रहती है। संस्कृति पर जब भी जि किस रूप में संकट आया, भारतीय नारी ने उसके संरक्षण का मौन व्रत लिया और उसे पूर्ण किया। भारतीय परंपरा में नारी को **'शक्ति', 'जननी'** और **'सहधर्मिणी'** के रूप में सम्मानित किया गया है। संस्कृत ग्रंथों में नारी को कभी देवी के रूप में पूजनीय माना गया है, तो कभी उसे सामाजिक बंधनों में जकड़ा हुआ भी दर्शाया गया है।

वैदिक साहित्य में जहाँ महिलाओं को शिक्षा, धर्म और सामाजिक जीवन में समान अधिकार प्राप्त थे, वहीं उत्तरकालीन साहित्य में उनकी स्थिति में धीरे–धीरे परिवर्तन देखा जाता है। महाकाव्यों, धर्मशास्त्रों और नाट्य साहित्य में महिलाओं की भूमिका, अधिकार और सीमाओं का विविध रूपों में चित्रण मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं की सामाजिक स्थिति स्थिर न रहकर समय और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रही है। धर्म शास्त्रों में कहा गया है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते यत्र देवता' जहॉ नारी की पूजा होती है, वहॉ देवता निवास करते है। धर्म, समाज और संस्कृति सहित जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में तुमने पूरूषों को गौरव प्रदान किया है, इसलिए हे नारी, हम तुम्हें 'योषा' के नाम से सम्बोधित करते है। **'योषा'** जैसे शब्द के संबोधन मात्र से जिस नारी के उपकारों का स्मरण रखने की परम्परा समाज में रही हो आज उसी नारी के सौंदर्य को स्तरहीन आकर्षण का आधार बनाकर विज्ञापनो में घसीट लिया गया है।

इस शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य संस्कृत साहित्य के विभिन्न कालखंडों में वैदिक, उत्तरवैदिक, महाकाव्य, धर्मशास्त्र और मध्यकालीन में महिलाओं की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत यह समझने का प्रयास किया गया है कि महिलाओं के अधिकार, कर्तव्य, शिक्षा, विवाह प्रणाली और सामाजिक सम्मान में किस प्रकार परिवर्तन आया। इस अध्ययन की पद्धति विश्लेषणात्मक है, जिसमें प्रमुख संस्कृत ग्रंथों–वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, स्मृतियाँ और नाट्य–काव्य को आधार लिया गया है।

वैदिक काल के संस्कृत साहित्य में महिलाओं की स्थिति

वैदिक काल भारतीय इतिहास का वह प्रारंभिक चरण है, जिसे सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत उन्नत माना जाता है। इस काल का प्रमुख स्रोत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं। इन ग्रंथों में महिलाओं की स्थिति का जो चित्रण मिलता है, वह अत्यंत सम्मानजनक, स्वतंत्र और सशक्त है। इस काल में महिलाओं को समाज में पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे, जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह काल महिलाओं के लिए स्वर्ण युग के रूप में देखा जा सकता है।

वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। वे न केवल वेदों का अध्ययन करती थीं, बल्कि दार्शनिक और आध्यात्मिक चर्चाओं में भी सक्रिय भाग लेती थीं। कई विदुषी महिलाओं ने वैदिक मंत्रों की रचना की, जिनमें प्रमुख हैं–घोष, गोधा, विश्वधारा, अपाला, उपनिषद्, निषत्, जुहू, अदिति, इंद्राणी, सरमा, रोमशा, उर्वसी, लोपामुद्रा, यमी, शाश्वती, सूर्या, सावित्री, गार्गी, मैत्रेयी आदि ब्रह्वादिनी है। **ऋग्वेद** के सूक्तों की मंत्रद्रष्ट ऋषिकाएँ यहीं हैं। ये महिलाएँ उच्च कोटि की दार्शनिक और विद्वान थीं। वैदिक काल में महिलाएँ धार्मिक अनुष्ठानों में पुरुषों के समान भागीदारी निभाती थीं। इसलिए पत्नी को '**सहधर्मिणी**' कहा गया है, जिसका अर्थ है–धर्म के कार्यों में समान सहभागी। वैदिक समाज में विवाह संस्था अपेक्षाकृत स्वतंत्र और सम्मानजनक थी। इस समय स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी, जिसमें कन्या को अपने जीवनसाथी के चयन का अधिकार था। इससे स्पष्ट होता है कि महिलाओं को वैवाहिक जीवन में भी पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी। महिलाओं को परिवार और समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। उन्हें **'गृहलक्ष्मी'** और **'गृहस्वामिनी'** माना जाता था। महिलाओं आर्थिक अधिकार पर प्रमाण सीमित हैं, फिर भी कुछ संकेत मिलते हैं कि महिलाओं को संपत्ति पर अधिकार प्राप्त था। उन्हें 'स्त्रीधन' दिया जाता था, जो उनका व्यक्तिगत अधिकार माना जाता था। वैदिक साहित्य में महिलाओं को उच्च नैतिक मूल्यों और आदर्शों का प्रतीक माना गया है। वे केवल गृहिणी ही नहीं, बल्कि समाज की नैतिक आधारशिला भी थीं।

उत्तरवैदिक काल में महिलाओं की स्थिति

वैदिक काल के पश्चात् उत्तरवैदिक काल (लगभग 1000 ई.पू. से 600 ई.पू.) में भारतीय समाज की संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते हैं। यह काल सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक दृष्टि से संक्रमण का काल था, जिसका प्रभाव महिलाओं की स्थिति पर भी स्पष्ट रूप से पड़ा। जहाँ वैदिक काल में महिलाओं को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता और सम्मान प्राप्त था, वहीं उत्तरवैदिक काल में उनकी स्थिति में धीरे–धीरे गिरावट आने लगी।

उत्तरवैदिक काल में महिलाओं की शिक्षा पर प्रतिबंध बढ़ने लगे। हालाँकि उच्च वर्ग की कुछ महिलाओं को शिक्षा मिलती रही, लेकिन यह सामान्य प्रथा नहीं रही। इस काल में समाज पितृसत्तात्मक होता गया। उत्तरवैदिक काल में विवाह संबंधी प्रथाओं में कई महत्वपूर्ण बदलाव हुए, जैसे– बाल विवाह, स्वयंवर प्रथा मे कमी, विवाह में कन्या की सहमति में कमी, बहुविवाह का प्रचलन बढ़ा, इन परिवर्तनों से महिलाओं की वैवाहिक स्वतंत्रता में कमी आयी। उत्तरवैदिक काल में विधवा विवाह प्रथा में कमी होती गयी। इस काल में महिलाओं की धार्मिक भूमिका भी सीमित होने लगी। तथा आर्थिक कार्यो में इनकी सहभागिता में कमी आ गया थी।

महाकाव्यों (रामायण और महाभारत) में महिलाओं की स्थिति

संस्कृत साहित्य के महाकाव्य–रामायण और महाभारत–भारतीय समाज, संस्कृति और नैतिक मूल्यों के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इन ग्रंथों में महिलाओं की स्थिति का चित्रण अत्यंत विविध और जटिल रूप में मिलता है। यहाँ महिलाओं को एक ओर आदर्श, त्यागमयी और शक्तिशाली रूप में प्रस्तुत किया गया है, तो दूसरी ओर वे सामाजिक बंधनों और अन्याय का सामना करती हुई भी दिखाई देती हैं। इस प्रकार महाकाव्यों में महिलाओं की स्थिति "मिश्रित" कही जा सकती है।

वाल्मिकि रामायण को विश्व का आदि महाकाव्य कहा जाता है। उसमें ऐसे विवरण है, जिनमें स्त्रियों द्वारा वेदमंत्रों का उच्चारण करने, हवन–यज्ञ, संध्योपासना, अग्निहोत्र आदि करने का उल्लेख है। यथा–**ततः स्वत्स्ययन कृत्वा मन्त्रविद् विजयैषिणी।** रामायण में सीता को आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया गया है। उनके व्यक्तित्व के प्रमुख गुण हैं, पतिव्रता, त्याग, समर्पण, धैर्य और सहनशीलता देखने को मिलता है। कौशल्या एक आदर्श माता, कैकेयी राजनीतिक प्रभाव रखने वाली रानी जबकि शूर्पणखा एक स्वतंत्र लेकिन नकारात्मक रूप में प्रस्तुत। वही महाभारत काल में महिलाओं की स्थिति महाभारत में महिलाओं का चित्रण अधिक जटिल और यथार्थवादी है।द्रौपदी का चरित्र साहस, आत्मसम्मान और प्रतिरोध का प्रतीक है। कुन्ती त्याग और कर्तव्य की प्रतिमूर्ति, गांधारी पति के प्रति समर्पण का प्रतीक। रामायण और महाभारत में महिलाओं की स्थिति न तो पूर्णतः स्वतंत्र थी और न ही पूर्णतः पराधीन। इन महाकाव्यों में महिलाओं का चित्रण समाज के बदलते स्वरूप और मूल्यों को दर्शाता है।

स्मृति एवं धर्मशास्त्रों में महिलाओं की स्थिति

संस्कृत साहित्य के अंतर्गत स्मृति और धर्मशास्त्र ग्रंथ सामाजिक व्यवस्था, नैतिक आचरण और जीवन के नियमों को निर्धारित करने वाले महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इन ग्रंथों में समाज को व्यवस्थित करने के लिए विभिन्न नियमों और कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है, जिनका महिलाओं की स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस काल में महिलाओं की भूमिका और स्वतंत्रता को एक निश्चित ढाँचे में बाँधने का प्रयास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। स्मृति कहती है, **"नास्ति वेदात्परं शास्त्र नास्ति मातुः समो गुरूः।।"** अर्थात वेद से बड़ा कोई शास्त्र नहीं है और माता से बड़ा कोई गुरू नहीं है।

मनु की पुत्री 'इड़ा' का वर्णन करते हुए तैत्तिरीय ब्राह्मण में उन्हें यज्ञानुकाशिनी बताया है। यज्ञानुकाशिनी का अर्थ सायणाचार्य ने 'यज्ञ तत्त्व प्रकाशन–समर्था' किया है। इड़ ने अपने पिता को यज्ञ–संबंधी सलाह देते हुए कहा–**साऽब्रवीदिड़ा मनुम्। तथा वाऽहं तवाग्नि माधास्ययामि यथा प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जनिष्यसे। प्रत्यस्मिंलोकेस्यास्यसि। अभि सुवर्ग लोकं जेयसीति।**

मनुस्मृति एक महत्वपूर्ण धर्म ग्रंथ है, जिसमें महिलाओं की स्थिति के बारे निम्न श्लोक से स्पष्ट होता है कि–

"पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थाविरे पुत्राः, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।"

इसका अर्थ है कि स्त्री को बचपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र द्वारा संरक्षित किया जाना चाहिएय अर्थात् उसे स्वतंत्रता नहीं दी गई है। स्मृति और धर्मशास्त्रों में महिलाओं की स्थिति वैदिक काल की अपेक्षा अधिक नियंत्रित और सीमित हो गई थी। यद्यपि उन्हें सैद्धांतिक रूप से सम्मान दिया गया, परंतु व्यवहारिक जीवन में उनकी स्वतंत्रता पर अनेक प्रतिबंध लगाए गए।

विष्णुपुराण का कथन है कि गृहस्थ आश्रम का मूल पत्नी है, उसका निर्माण ही इसके लिए हुआ है। धर्म, अर्थ, काम, इन तीनों की प्राप्ति पत्नी द्वारा होती है।

पत्नी मूलं गृहं पुंसां यदिच्छिंदानुवर्तिनीं।
तथा धर्मार्थ कामानां त्रिवर्ग फलमश्नुव्र।।

पाराशर स्मृति कहती है कि जो निर्दोष पत्नी को युवावस्था में त्याग देता है वह उस पाप से सात जन्मों तक स्त्री–जन्म लेकर बार–बार विधवा होता है–

अदुष्ठापतितां भार्व्या यौवने यः परित्यजेत्।
सप्तजन्म भवेत् स्त्रीत्व वैधव्यज्ज पुनः पुनः।।

आपस्तम्ब स्मृति कहती है कि जो पुरूष परायी स्त्रियों को माता के समान, पराये धन को धूल के समान और सभी प्राणियों को अपने समान मानता है, वही सच्चा पण्डित है–

अनुकुलकलत्रोय स्तस्य स्वर्ग इहैव हि।
प्रतिकूल कलत्रस्य नरको नात्र संशय।।
स्वर्गेऽपि दुर्लभं ह्योतदनुराग परस्परम्।

यमस्मृति में स्त्रियों के लिए प्राचीनकाल में मौज्जीबंधन, वेदाध्ययन तथा गायत्री–उपासना के प्रावधान की बात कही गई है–**पुराकल्पे तु नारीणां मौज्जीबन्धनमिप्यते। अध्ययपनं व वेदानां सावित्री वाचनं तथा।**

संस्कृत नाटकों और काव्यों में महिलाओं की स्थिति

संस्कृत नाटक और काव्य साहित्य भारतीय समाज के सांस्कृतिक, भावनात्मक और सौंदर्यपरक पक्षों का अत्यंत समृद्ध चित्रण प्रस्तुत करते हैं। इस साहित्य में महिलाओं को केवल सामाजिक इकाई के रूप में ही नहीं, बल्कि प्रेम, करुणा, सौंदर्य, त्याग और संवेदनशीलता के प्रतीक के रूप में भी चित्रित किया गया है। यहाँ महिलाओं की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक जीवंत, मानवीय और बहुआयामी रूप में दिखाई देती है।

महाकवि **कालिदास** ने अपने नाटकों में महिलाओं को अत्यंत सौंदर्यपूर्ण और संवेदनशील रूप में चित्रित किया है। **अभिज्ञानशाकुंतलम्** में **शकुंतला** को प्रकृति–प्रेमी, सरल और भावुक नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनका चरित्र प्रेम, प्रतीक्षा और नारी की आंतरिक शक्ति को दर्शाता है। **मालविकाग्निमित्रम्** में **मालविका** का चरित्र सौंदर्य, कोमलता और आकर्षण का प्रतीक है, साथ ही उसमें आत्मसम्मान भी निहित है। **विक्रमोर्वशीयम्** में **उर्वशी** एक अप्सरा होते हुए भी मानवीय भावनाओं से परिपूर्ण है, जो प्रेम और विरह की गहराई को दर्शाती है। जबकि भास के नाटकों में महिलाओं का चित्रण अधिक यथार्थवादी है। तथा वे परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लेने वाली और साहसी दिखाई देती हैं। **शूद्रक** के **"मृच्छकटिकम्"** में **वसंतसेना** एक गणिका होते हुए भी स्वतंत्र, समृद्ध और आत्मनिर्भर है। **नाट्यशास्त्र** में **भरतमुनि** ने नारी के विषय में कहा है **"सर्व प्रयिण लोकाडयं सुखमिच्छति सर्वदा, सुखस्य च स्त्रियोंमूला नानाशीलधराश्च"। मालतीमाधव** के षष्ठांक में कपालकुण्डला का क्रोध अपने गुरू अधीरकण्ठ को **मालती** के निमित्त वध करने वाले माधव के प्रति व्यक्त होता है और वह प्रतिशोध की धमकी देती है। संस्कृत काव्य (महाकाव्य और लघुकाव्य) में महिलाओं को मुख्यतः सौंदर्य, प्रेम और श्रृंगार के संदर्भ में चित्रित किया गया है। संस्कृत काव्य में श्रृंगार रस को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, जिसमें नारी की भूमिका केंद्रीय होती है। संस्कृत नाटकों और काव्यों

में महिलाओं का चित्रण अत्यंत समृद्ध, सौंदर्यपूर्ण और बहुआयामी है। यहाँ उन्हें केवल सामाजिक बंधनों में बंधी हुई नारी के रूप में नहीं, बल्कि प्रेम, संवेदना और सांस्कृतिक मूल्यों की वाहक के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

बौद्ध और जैन साहित्य में महिलाओं की स्थिति

संस्कृत साहित्य के व्यापक परिप्रेक्ष्य में बौद्ध और जैन साहित्य का विशेष स्थान है। इन परंपराओं ने वैदिक और ब्राह्मणवादी व्यवस्था से भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, विशेषकर सामाजिक समानता, अहिंसा और आध्यात्मिक उन्नति के संदर्भ में। महिलाओं की स्थिति के संदर्भ में भी इन दोनों धाराओं ने महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी विचार प्रस्तुत किए। बौद्ध साहित्य, विशेषकर त्रिपिटक, में महिलाओं के जीवन, उनके आध्यात्मिक विकास और सामाजिक भूमिका का उल्लेख मिलता है। महात्मा बुद्ध ने प्रारंभ में महिलाओं को संघ में प्रवेश देने में संकोच किया, परंतु बाद में उन्होंने अनुमति दी। महाप्रजापती गौतमी को प्रथम भिक्षुणी माना जाता है। महिलाओं के लिए संघ में प्रवेश के साथ कुछ विशेष नियम बनाए गए, जिन्हें "गुरुधर्म" कहा जाता है। नारी को मोह और माया का प्रतीक भी माना गया (कुछ संदर्भों में)।

जैन साहित्य में महिलाओं की स्थिति

जैन धर्म ने भी महिलाओं को आध्यात्मिक उन्नति का अवसर प्रदान किया, परंतु इसमें भी कुछ सीमाएँ थीं। जैन धर्म में महिलाओं के लिए साध्वी (नन) बनने की परंपरा विकसित हुई। वे तप, संयम और त्याग के मार्ग पर चलती थीं। जैन धर्म के दो प्रमुख संप्रदायों–दिगंबर और श्वेतांबर, में महिलाओं की मोक्ष प्राप्ति को लेकर मतभेद है। उन्हें नैतिकता और संयम का प्रतीक माना गया।

मध्यकालीन संस्कृत साहित्य में महिलाओं की स्थिति

मध्यकालीन काल (लगभग 600 ईस्वी से 1700 ईस्वी तक) भारतीय समाज और संस्कृति में गहन परिवर्तन का काल था। इस समय राजनीतिक अस्थिरता, विदेशी आक्रमणों, सामंती व्यवस्था और धार्मिक रूढ़ियों के कारण सामाजिक संरचना अधिक जटिल और कठोर हो गई। इन परिवर्तनों का प्रत्यक्ष प्रभाव महिलाओं की स्थिति पर भी पड़ा, जो संस्कृत साहित्य में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। मध्यकालीन समाज में महिलाओं की स्थिति पहले की अपेक्षा अधिक सीमित और नियंत्रित हो गई। महिलाओं की स्वतंत्रता में भारी कमी आई, क्योंकि पर्दा प्रथा का प्रचलन बढ़ा, महिलाओं के बाहर आने–जाने पर नियंत्रण। बाल विवाह, सती प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित हुआ। विधवा विवाह लगभग समाप्त हो गया। मध्यकालीन संस्कृत साहित्य में महिलाओं का चित्रण मुख्यतः निम्न रूपों में मिलता है–सौंदर्य और श्रृंगार का केंद्र, काव्य साहित्य में नारी को सौंदर्य और आकर्षण का प्रतीक बनाया गया। तथा उसके शारीरिक रूप का विस्तृत वर्णन किया गया।

धार्मिक और नैतिक भूमिका

महिलाओं को धर्म और नैतिकता का पालन करने वाली माना गया। उनका मुख्य कर्तव्य परिवार की मर्यादा बनाए रखना था। धार्मिक कार्यों में उनकी भूमिका सीमित लेकिन आवश्यक रही। महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता लगभग समाप्त हो गई, और संपत्ति पर अधिकार बहुत सीमित हो गया था।

मध्यकालीन काल महिलाओं की सामाजिक स्थिति के दृष्टिकोण से एक अवनति का काल माना जा सकता है। इस समय महिलाओं की स्वतंत्रता, शिक्षा और सामाजिक भागीदारी में उल्लेखनीय कमी आई। संस्कृत साहित्य में भी यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ महिलाओं को मुख्यतः सौंदर्य, भोग और पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित कर दिया गया। इस प्रकार, मध्यकालीन संस्कृत साहित्य महिलाओं की स्थिति के एक सीमित और नियंत्रित स्वरूप को प्रस्तुत करता है, जो उस समय की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रतिबिंब है।

धार्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण का द्वैत

संस्कृत साहित्य में एक महत्वपूर्ण विरोधाभास दिखाई देता है। क्योंकि एक ओर **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"** जैसे श्लोक महिलाओं के सम्मान की बात करते हैं। तथा दूसरी ओर **"न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति"** जैसे विचार उनकी स्वतंत्रता को सीमित करते हैं। यह द्वैत दर्शाता है कि समाज में महिलाओं के प्रति सम्मान और नियंत्रण दोनों साथ–साथ मौजूद थे।

निकर्षतः कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में महिलाओं की सामाजिक स्थिति का यह विश्लेषण स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि भारतीय समाज में नारी की भूमिका समय, परिस्थिति और सामाजिक संरचना के अनुसार निरंतर परिवर्तित होती रही है। यह परिवर्तन एक सरल या एकरेखीय प्रक्रिया नहीं था, बल्कि यह विभिन्न ऐतिहासिक चरणों में अलग–अलग रूपों में विकसित हुआ। इस शोध के आधार पर निम्नलिखित प्रमुख निष्कर्ष सामने आते हैं। वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा, धार्मिक अधिकार, सामाजिक सहभागिता और वैवाहिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। वे समाज में सम्मानित स्थान रखती थीं और बौद्धिक जीवन में भी सक्रिय थीं। उत्तरवैदिक काल में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सुदृढ़ होने के कारण महिलाओं की स्वतंत्रता और शिक्षा में धीरे–धीरे कमी आने लगी। सामाजिक नियंत्रण बढ़ने लगा। रामायण और महाभारत में महिलाओं का चित्रण दोहरे स्वरूप में मिलता है–एक ओर आदर्श, त्यागमयी और शक्तिशाली नारी, तो दूसरी ओर सामाजिक बंधनों में बंधी हुई स्त्री। यह काल संक्रमण की स्थिति को दर्शाता है। मनुस्मृति एवं अन्य धर्मशास्त्रों में महिलाओं की स्वतंत्रता पर स्पष्ट नियंत्रण दिखाई देता है। उन्हें जीवनभर पुरुष आश्रय में रहने का निर्देश दिया गया, जिससे उनकी स्वायत्तता सीमित हो गई। बौद्ध और जैन साहित्य में महिलाओं को आध्यात्मिक उन्नति का अवसर मिला, जो एक सकारात्मक परिवर्तन था। हालांकि, पूर्ण समानता की स्थिति वहाँ

भी स्थापित नहीं हो पाई। मध्यकालीन संस्कृत साहित्य और समाज में महिलाओं की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक सीमित और नियंत्रित हो गई। शिक्षा, स्वतंत्रता और सामाजिक भागीदारी में भारी गिरावट देखी गई। यह अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि संस्कृत साहित्य केवल धार्मिक या साहित्यिक ग्रंथों का संग्रह नहीं है, बल्कि यह समाज की मानसिकता, मूल्य व्यवस्था और सामाजिक संरचना का जीवंत दस्तावेज है। महिलाओं की स्थिति का अध्ययन यह समझने में सहायक है कि भारतीय समाज में लिंग–आधारित भूमिकाएँ किस प्रकार विकसित हुईं।

संदर्भ ग्रंथ–

1. उपाध्याय, बलदेव (2000),'संस्कृत वाड़गमय का वृहद इतिहास, सप्तम खण्ड प्र0सं0, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।
2. उपाध्याय, बलदेव (1999),'संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन 5 बी0 सिगरा वाराणसी।
3. मिश्र, प्रो0 अभिराज (2010),'संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षत्मक काव्यशास्त्र, राजेन्द्र विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी।
4. त्रिपाठी, बाबूराम (1973),'संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
5. भार्गव, दयानन्द (2019),'आधुनिक संस्कृत साहित्य', राजस्थानी ग्रन्थागार सोजाती गेट के बाहर जोधपुर, राजस्थान।
6. ऋग्वेद– वेद साहित्य, विभिन्न सूक्त।
7. यजुर्वेद– यज्ञ एवं सामाजिक निर्देश।
8. सामवेद– धार्मिक एवं सांगीतिक संदर्भ।
9. अथर्ववेद– सामाजिक जीवन एवं परंपराएँ।
10. उपनिषद– दार्शनिक संवाद (विशेषतः बृहदारण्यक उपनिषद)।
11. वाल्मीकि रामायण– आदर्श नारी एवं सामाजिक संरचना।
12. महाभारत– स्त्री जीवन, द्रौपदी प्रसंग, सामाजिक मूल्य।
13. मनुस्मृति– सामाजिक नियम एवं स्त्री संबंधी विधान।
14. याज्ञवल्क्य स्मृति– गृहस्थ एवं स्त्री अधिकार।
15. नारद स्मृति– सामाजिक एवं विधिक संरचना।
16. कालिदास– अभिज्ञानशाकुंतलम्, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम्।
17. शूद्रक– मृच्छकटिकम्।
18. भास के नाटक– संस्कृत नाट्य परंपरा।